Airo International Research Journal
ISSN: 2320-3714
July 2020, Volume 22

योग साधना में यम-नियम का महत्व

SANTOSH RANI

M.A. Yoga (Net), Dept. of Phy.Education

Chaudhary Ranbir Singh University, Jind

सारांश:-

मनुष्य सामाजिक प्राणी है, समाज के अंदर सुख पूर्वक जीवन व्यतीत करना उसका परम लक्ष्य है, इस सुख को प्राप्त करने के लिए वह संसार में इधर-उधर भटकता फिरता है, वह सभी प्रकार की सुख और शांति को भोगना चाहता है। इसलिए वह जीवन पर्यन्त प्रयासरत रहता है परंतु उसे कहीं भी वास्तविक सुख प्राप्त नहीं होता। एक व्यक्ति नहीं विश्व के संपूर्ण व्यक्ति यह सुख प्राप्त करने का प्रयास करते हैं और विश्व में जो कुछ भी प्राणी कर रहा है, वह एक ही लक्ष्य को सामने रखकर कार्य करता की उसको करने से उसको सुख मिलेगा। परंतु होता कुछ और ही है। अपने - अपने विवेक के द्वारा चिंतन करने पर भी कोई सर्वसम्मत मार्ग नहीं निकल पाता जिससे अशांति दिन -प्रतिदिन बढ़ती जा रही है इसका अर्थ यह हुआ कि दुनिया के लोग जिन उपायों के लिए विचार करते हैं। उसमें सार्थकता तो है परंतु परिपूर्णता, समग्रता एवं व्यापकता नहीं है। परंतु ऐसा क्यों नहीं हो सकता कि दुनिया का हर इंसान उस रास्ते पर चल सके, क्या ऐसे कुछ नियम बन सकते हैं, जिस पर दुनिया का प्रत्येक व्यक्ति उन नियमों पर चलकर वास्तविक सुख की प्राप्ति कर सके। जिन नियमों को अपनाकर वह जीवन में पूर्ण सुख, शांति और आनंद को प्राप्त कर सके। मनुष्य जीवन में एक ऐसा पथ है जिसको अपनाकर मनुष्य संपूर्ण जीवन को सुख पूर्वक जी सकता है। वह मार्ग है महर्षि पतंजलि द्वारा वर्णित अष्टांग योग के दो सोपान यम - नियम। इनको अपनाकर हम जीवन में आई समस्याओं से छुटकारा पा सकते हैं।

मूलशब्द:- यम-नियम, अष्टांग योग, आत्मकेंद्रित, कटुवाणी, धुलोक, योग यज्ञ, आचरण, सदगमय।

प्रस्तावना:- महर्षि पतंजलि ने योग को दोबारा से सूत्रबध किया है, इन्होंने योग के आठ अंगों का वर्णन अपने पतंजलि योग सूत्र में किया है, इनमे से यम अष्टांग योग का पहला अंग

Airo International Research Journal
ISSN: 2320-3714
July 2020, Volume 22

बताया गया है। यम शब्द 'यमुउपरमें' धातु से निष्पन होता है जिसका अर्थ है इंद्रियों एवं मन को हिंसादि भावों से हटाकर आत्मकेंद्रित किया जाए – वही यम है। महर्षि पतंजलि द्वारा वर्णित अष्टांग योग संपूर्ण जीवन जीने की पद्धति है। योगिक जीवन जीना ही सब सुखों की खान है और इस जीवन को जीने के लिए सर्वप्रथम यम – नियम का पालन करना आवश्यक है, यम-नियम का पालन करवाकर ही हम बच्चों को जीवन जीने की कला सिखा सकते हैं। जब हम बच्चों को प्रारंभिक स्तर से ही यम –नियम की शिक्षा देंगे तो बच्चे आराम से एक ही यौगिक जीवन जी सकेंगे और उनके जीवन में सुख शांति होगी तभी हमारा विश्व योग के रास्ते पर चल सकेगा और संपूर्ण मनुष्य जीवन सफल तथा सुखमय बन जाएगा। यम – नियम के द्वारा ही व्यक्तिक एवं सामाजिक समरसता, शारीरिक स्वास्थ्य, बौद्धिक जागरण, मानसिक शांति एवं आत्मिक आनंद की अनुभूति हो सकती है। यम –नियम एक व्यवहारिक उपाय है जो क्षेत्र की अशुद्धियों को दूर करता है और वास्तविक सुख प्राप्ति के लक्ष्य को प्राप्त करने का मार्ग दिखाता है। प्रस्तुत पेपर में हम यम – नियमो का वर्णन कर रहे हैं।

यम: - **उत्पत्ति-**

यम्यन्ते उपरम्यन्ते निवर्त्यन्ते हिंसादिभ्य

इंद्रियाणी यैस्ते यमाः

अथार्त यम शब्द 'यमु उपरमें' धातु से निष्पन होता है जिसका अर्थ है जिनके अनुष्ठान से इंद्रियों एवं मन को हिंसादि अशुभ भावों से हटाकर आत्म केंद्रित किया जाए, वही यम है। यदि यम को जीवन में अपनाया जाए तो योग साधना खंडित नहीं होती।

प्रथम कहो यम के दश अंगा। समझै योग न होवे।।

भक्ति सागर में यम के दस अंग बताए हैं। इनको समझे बिना योग साधना संभव नहीं है। महर्षि पतंजलि ने यमों का वर्णन व्यक्ति, समाज, राष्ट्र व विश्व को स्वस्थ तथा मजबूत बनाने के लिए किया है जो इस प्रकार है –

अहिंसासत्यास्तेय ब्रह्मचर्य परिग्रहा यमाः (योग दर्शन 2/30)

अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह इन पांच नियमों का वर्णन महर्षि पतंजलि ने किया है।

Airo International Research Journal
ISSN: 2320-3714
July 2020, Volume 22

नियम :- प्रत्येक कार्य को सफल बनाने के लिए कुछ नियमों का पालन आवश्यक होता है नियम का प्रभाव अप्रत्यक्ष रूप से समाज पर और प्रत्यक्ष रूप से व्यक्ति से रहता है। परंतु व्यक्ति समाज की ही एक इकाई है। "हम बदलेंगे जग बदलेगा।"यमों का सेवन नित्य करें, केवल नियमों का नहीं क्योंकि यमों को न करता हुआ मनुष्य जो केवल नियमों का पालन करता है वह पतित हो जाता है। इसलिए यम सेवन पूर्वक नियम सेवन नित्य किया करें। उस अपवर्ग की सिद्धि के लिए यम नियमों के द्वारा आत्मा संस्कार अर्थात अधर्म को दूर करना एवं धर्म का आचरण करना चाहिए।

यम: - महर्षि पतंजलि के अनुसार पांच यम हैं - अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य तथा अपरिग्रह।

अहिंसा :- अहिंसा का अर्थ है किसी भी प्राणी को मन, वचन, कर्म से किसी प्रकार कोई कष्ट न देना। मन में किसी के प्रति द्वेष न रखना किसी का अहित न सोचना, किसी को कटुवाणी आदि के द्वारा भी कष्ट न देना, अर्थात अहिंसा का अर्थ है – गहन - प्रेम जहां प्रेम का धारा निरंतर और निर्बाध रूप से बह रही हो, अहिंसक होने का अर्थ है – हितेषी होना, सबकी मदद करना अपनी भी और दूसरों की भी। किसी भी स्थान पर किसी भी दिन किसी भी प्राणी की हिंसा न करना ही अहिंसा है। तन, मन, वचन से किसी को दुखी न करना, न करने की सोचना, इसे ही अहिंसा कहते हैं। महर्षि व्यास भी कहते हैं :- सब प्रकार से सब कालों में समस्त भूतों को पीड़ा न देना अहिंसा है। महर्षि पतंजलि ने अहिंसा पालन करने का फल बताते हुए कहा है। अहिंसा का आचरण परिपक्व जो ना जाने पर उस मानव का सब प्राणियों के प्रति वैरभाव छूट जाता है और उसके उपदेश को समझने वाले और उसका आचरण करने वाले का भी अपने आचरण के अनुसार अन्य प्राणियों के प्रति वैरभाव छूट जाता है। अहिंसा के फल के बारे में सामवेदीय ऋचा में कहां गया है कि 'अहिंसानीय' योग के द्वारा भक्ति रस का पान करता हुआ साधक विश्व-बंधुत्व की भावना को प्राप्त कर लेता है। उसे संसार में किसी से भय नहीं रहता, साधक वेद को शब्दों में प्रार्थना करता है कि हमें अंतरिक्ष से, धुलोक से, पृथ्वी लोक से, आगे– पीछे से, ऊपर– नीचे से अभय प्राप्त हो। अहिंसा सिद्ध साधक के लिए लोक-परलोक दोनों ही कल्याणकारी होते हैं।

Airo International Research Journal
ISSN: 2320-3714
July 2020, Volume 22

सत्य :- सत्य का अर्थ है – झूठ न बोलना, जो सत्य है उसी को बोलना। कुछ भी सुना जैसा देखा उसकी मन में धारणा करना, वाणी से बोलना और वैसा ही आचरण करना सत्य कहलाता है। असतो मा सदगमय असत्य को हटाकर सत्य की ओर अग्रसर होने की कामना मनुष्य को हमेशा करनी चाहिए। स्वामी चरणदास कहते हैं – सत्य को घुमा – फिरा कर ना बोले, जो भी वचन अपने मुख से निकाले उसे सोच – समझकर विचार करके कहीं मैं झूठ तो नहीं बोल रहा हूं तब बाहर निकाले। सत्य को धर्म की संज्ञा दी गई है सत्य से बढ़कर कोई धर्म नहीं है और झूठ से बढ़कर कोई पाप नहीं है, सत्य ही शिव है औरशिव ही सुंदर है- सत्यम शिवम सुंदरम वेद का ऋषि कहता है- हे पुरुष श्रेष्ठ परमेश्वर! तेरी महिमा को जानकर मैं सदैव सत्य बोलूंगा असत्य नहीं। महर्षि पतंजलि कहते हैं :- कि जिस व्यक्ति का शरीर, मन और वाणी सत्य का आचरण करते हुए परिपक्व हो जाती है, उसकी भविष्य वाणी सिद्ध हो जाती है, उसके मुख से निकला प्रत्येक शब्द सत्य हो जाता है। अर्थात फलीभूत हो जाता है। प्रत्येक मनुष्य को ऐसी वाणी बोलनी चाहिए जो किसी दूसरे प्राणियों को दु:ख न पहुंचाएं जो दूसरों को दु:ख पहुंचाने वाली वाणी होती है वास्तव में वह खुद के लिए भी कष्टदायी होती है हम दूसरों को कष्ट देकर सुख की इच्छा कभी नहीं कर सकते। अतः हमें ऐसी वाणी या सत्य का आचरण करना चाहिए जो छल – कपट से रहित हो, दूसरों का हित चाहने वाली है जिसमें कोई भ्रान्ति ना हो

अस्तेय:- अस्तेय का अर्थ है :- चोरी ना करना। शास्त्रों में जो शास्त्र विरुद्ध ढंग बताया है। अगर हम उस ढंग से किसी दूसरे की वस्तु को ग्रहण करते हैं तो वह भी चोरी करना ही है। अथारत दूसरों की वस्तु को ग्रहण करने की मन में लालसा रखना भी पाप ही बताया गया है।

शांडिल्योपनिषेद के अनुसार:- शरीर, मन, वाणी द्वारा दूसरे के द्रव्य की इच्छा करना भी असत्य कहलाता है।

महर्षि पतंजलि के अनुसार :- केवल चोरी को छोड़ देना ही अस्तेय नहीं है बल्कि मन, वाणी और शरीर से चोरी का परित्याग करके उत्तम कार्यों में तन, मन और धन से सहायता करना अस्तेय है। याज्ञवलयक समृति में कहा है कि मन, वचन और कर्म से दूसरों के द्रव्य की मन में चाह ना रखना ही अस्तेय है। तत्व दर्शी ऋषियों ने भी ऐसा ही कहा है। महर्षि पतंजलि

Airo International Research Journal
ISSN: 2320-3714
July 2020, Volume 22

अस्तेय का फल बताते हुए कहते हैं की अस्तेय के प्रतिष्ठित हो जाने पर संसार के छुपे हुए रतन भी उसके सामने स्वयं उत्पन्न हो जाते हैं। उसको संसार के सभी ऐश्वर्य उसे प्राप्त हो जाते हैं। इसलिए जीवन के प्रत्येक रास्ते पर हमें अस्तेय का पालन करना चाहिए।

ब्रह्मचर्य :- ब्रह्म जैसी चर्या परमात्मा तथा वेद में विचरण करना ही ब्रह्मचर्य है वीर्य का नाश ही मृत्यु है और वीर्य की रक्षा ही जीवन है। महाभाष्यकार व्यास जी ब्रह्मचर्य का लक्षण बताते हुए कहते हैं कि गुतेन्द्रिय का संयम करना ही ब्रह्मचर्य है शुक्र रक्षण करना इसका प्रमुख कर्म है। कामवासना की उत्तेजित करने वाले खान-पान, दृश्य-श्रव्य एवं श्रृंगारादि का परित्याग कर सतत वीर्य रक्षा करते हुए ऊचर्वरेता होना ब्रह्मचर्य कहलाता है। शरीर, मन और वाणी द्वारा मैथुन का त्याग करना ही ब्रह्मचर्य कहा जाता है। वेदों को पढ़ना ईश्वर की उपासना करना और वीर्य की रक्षा करना ही ब्रह्मचर्य है। महर्षि – पतंजलि ब्रह्मचर्य का फल बताते हुए कहते हैं कि ब्रह्मचर्य भाव के चित में पूर्णत प्रतिष्ठित हो जाने पर, साधक को चुंबकीय आकर्षण से युक्त तेजस्विता की प्राप्ति हो जाती है। महर्षि व्यास करते हैं जिसकी प्राप्ति से योगी अपने अप्रतिघात गुणों को बढ़ाता है। स्वयं सिद्धि को प्राप्त हुआ शिष्यों में ज्ञान के आधान में समर्थ होता है। ब्रह्मचर्य के बल से देवता मृत्यु को जीत लेते हैं।

अपरिग्रह:- परिग्रह का अर्थ है चारों ओर से संग्रह करना अर्थात आवश्यकता से अधिक धन का संग्रह करना परिग्रह है और इसका त्याग करना ही अपरिग्रह है, जीवन जीने के कम से कम साधनों में संतुष्ट रहकर परमात्मा की आराधना या उपासना करना ही अपरिग्रह है। महर्षि पतंजलि अपरिग्रह का फल बताते हुए कहते हैं कि अपरिग्रह की स्थिरता होने पर भूत, भविष्यत तथा वर्तमान जन्म का ज्ञान होता है जिसके पास विद्या है, विद्या दान करें और परमात्मा से प्रार्थना करें कि हे सोम स्वरूप अखंडनीय परमेश्वर। हम उत्तम पराक्रम से युक्त विद्या - धन के देने वाले बने। महर्षि पतंजलि यमों के विषय में कहते हैं - कि किसी जाति, देश, काल और किसी के द्वारा बनाए गए नियमों द्वारा इन्हें सीमित नहीं किया जा सकता, सर्वत्र भूगोल में, सभी जगह, सभी विषयों और सब प्रकार से इसका पालन करना महाव्रत कहलाता है।

नियम:- नियमों की संख्या महर्षि पतंजलि ने पांच बताई है। शौच, संतोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वर प्राणीधान आदि।

Airo International Research Journal
ISSN: 2320-3714
July 2020, Volume 22

शौच :- शौच का अर्थ है :- शुद्धि या पवित्रता से लिया जाता है शौच को दो प्रकार की बताया गया है- बहाय और आभ्यंतर। बाहय शुद्धि से तात्पर्य बाहरी वस्तुओं जैसे - भोजन, वस्त्र, शरीर, मकान आदि की पवित्रता से लिया गया है। अपनी योग्यता के अनुसार धन उपार्जित करना जिससे जीवन में निर्वाह कर सके आवश्यक आदि पवित्र वस्तुओं को प्राप्त करके शुद्ध शास्त्र विधि के अनुसार भोजन आदि करना। यह बाहय शुद्धि कही जाती है। आभयंतर सोच में विचारों की शुद्धि कही जाती है अर्थात विचारों की पवित्रता और संस्कारों की शुद्धता को आभयंतर शौच कहा जाता है। मनु स्मृति में महाराज मनु ने बाहय शुद्धि के लिए जल को बताया है - जल के द्वारा शरीर के अंग-प्रत्यंग शुद्ध होते हैं और आंतरिक शुद्धि के लिए सत्य का पालन बताया है- सत्य का पालन करने से मन में पवित्रता आती है और ज्ञान में वृद्धि होती है। ज्ञानार्जन से बुद्धि शुद्ध हो जाती हैं। शौच का पालन करना भी मन से, वचन से, और कर्म से करना चाहिए। महर्षि पतंजलि कहते हैं कि अगर बाहय शुद्धि का पालन किया जाए तो शरीर में आसक्ति खत्म हो जाती है फिर अपना शरीर हो या दूसरे का इस प्रकार दूसरे सांसारिक मनुष्य से संसर्ग करने की इच्छा खत्म हो जाती है। मनुष्य का अपने या दूसरों के शरीर से वैराग्य हो जाता है। जप, तप और मैत्री आदि की भावना से साधन द्वारा आंतरिक शुद्धि होने पर मनुष्य के राग-द्वेष, ईर्ष्या आदि भावों का नाश होकर अंत:करण निर्मल और शुद्ध हो जाता है। वेदों में भी पवित्र होने की प्रार्थना की गई है। इनमें कहा गया है कि विद्वान जन मुझे ज्ञान विज्ञान से पवित्र करें। मेरी बुद्धि को पवित्र करें। समस्त जगत के प्राणी, ज्ञानीजन और ईश्वर मुझे पवित्र करें।

संतोष :- संसार के अंदर प्रत्येक मनुष्य को अपना-अपना कर्तव्य या कर्म करना पड़ता है इस प्रकार जब मनुष्य को संसार में कर्म करते हुए या कर्म का पालन करते हुए अपने प्राबध के अनुसार जो भी परिणाम प्राप्त हो या जिस भी अवस्था में रहने का संयोग परमात्मा दे उसी में संतुष्ट रहना ही संतोष है। दूसरे शब्दों में अपने पास जो भी साधन उपलब्ध है। उसके द्वारा पूर्ण पुरुषार्थ करने फल जिस भी फल की प्राप्ति होती है उसी में संतुष्ट रहना संतोष कहलाता है। मनु महाराज जी कहते हैं की मनुस्मृति के अनुसार मनुष्य के लिए पंच यज्ञ करने का विधान है इन पंच यज्ञों का पालन करते हुए अपने शरीर के सामर्थ्य से अपने परिवार, अतिथि, पशु और अपने जीवन - यापन के लिए जितना धन आवश्यक है उसे उपार्जित करना ही संतोष है। महर्षि पतंजलि कहते हैं कि संतोष ही सब सुखों की खान है वे

Airo International Research Journal
ISSN: 2320-3714
July 2020, Volume 22

बताते हैं कि जब मनुष्य संतुष्ट या चाहरहित हो जाता है तो अंनत सुख की अनुभूति होती है जो संसार के सभी सुखों से परे हैं। महर्षि व्यास कहते हैं - लोक में जो काम जन्य सुख है और महान स्वर्ग का सुख है और यें सुख और वृष्णा के क्षय होने के सुख के सोलवें भाग के बराबर भी नहीं हो सकते। आचार्य रजनीश जी कहते हैं कि जो कुछ भी हैं वही सुंदर है, यह अनुभूति होना जो भी है वही श्रेष्ठ है। इस प्रकार की अनुभूति होना ही संतोष है। इस प्रकार संतोष का योग साधनातमक जीवन के लिए महत्व बताया गया है क्योंकि संतोष के न होने पर साधक साधना मार्ग में आगे नहीं बढ़ सकता और न ही सांसारिक प्राणी सुख जीवन व्यतीत कर पाता।

तप:- क्षुधा-पिपासा, शीत-उष्ण, संपत्ति-विपत्ति, सुख-दुख, मान- अपमान आदि द्वन्द्वो को समान भाव से सहते हुए एकरूप रहने का अभ्यास करना तप कहलाता है महा भाष्यकार व्यास देव के अनुसार:- अतपस्वी का योग कभी भी सिद्ध नहीं हो सकता वह योग साधना में आगे नहीं बढ़ सकता। अतपसवी या दुर्बल पुरुष चित की वृतियों का निरोध करने में असमर्थ होता है। गीता के अंदर तीन प्रकार के तप का वर्णन किया गया है :- सात्विकतप, राजसतप, तामसतप।

1. सात्विकतप:- श्रद्धापूर्वक अर्थात आस्तिक बुद्धि के साथ फल की आकांक्षा से रहित होकर मनुष्य के द्वारा जो तप किया जाता है वह सात्विक तप कहलाता है।
2. राजसतप :- कुछ दम्भी मनुष्य संसार में प्रशंसा सतकार प्राप्त करने के लिए तप करते हैं कि वह मनुष्य बड़ा श्रेष्ठ है, तपस्वी है इसको प्राप्त करने के लिए किया गया है वह राजस तप कहलाता है। भगवान कहते हैं :- महातप बड़ा चंचल और अस्थाई होता है कुछ दिनों में इन पाखंडी दम्भी मनुष्यों के रहस्य खुल जाते हैं। उनकी वास्तविकता प्रकट हो जाती है जब इनके मन में छिपी सम्मान की प्राप्ति की इच्छा का लोगों को पता चल जाता है उसका तप उसी दिन विनिष्ट हो जाता है।
3. तामसतप :- जो तप अपने शरीर को कष्ट देकर दूसरों को हानि पहुंचाने के लिए किया जाता है वह तामसतप कहलाता है। इस तप में संवेग तीव्रता होती है यह बड़ा भयानक तप कहलाता है इस तप को योग में सदा अनुपयोगी बताया जाता है। महर्षि पतंजलि के अनुसार सात्विक तप करने से शरीर और इंद्रियों के मल का नाश हो

Airo International Research Journal
ISSN: 2320-3714
July 2020, Volume 22

जाता है। योगी का शरीर स्वस्थ, स्वच्छ और हल्का हो जाता है। काय संपदरूप शरीर-संबंधी सिद्धियां प्राप्त हो जाती है एवं सूक्ष्म, दूरदेश में और व्यवधान युक्त स्थानों में छिपे विषयों को देखना, सुनना आदि इंद्रिय संबंधी सिद्धि प्राप्त हो जाती है। तप से ईश्वरीय ज्ञान प्राप्त करके उपासक पवित्र सुरक्षित और आनंदित होता है।

4. स्वाध्याय :- स्वाध्याय का अर्थ है स्वयं का अध्ययन, स्वयं को देखना, स्वयं का ध्यान करना, स्वयं का अध्ययन या निरक्षण करते हुए स्वयं को जानना, उत्तम शास्त्रों जैसे वेद उपनिषद और गीता का अध्ययन करना भी स्वाध्याय कहलाता है। स्वाध्याय आत्मा को परमात्मा की तरफ लेकर जाता है महर्षि व्यास स्वाध्याय के लक्षण बताते हुए कहते हैं कि ओंकार, गायत्री मंत्र आदि मंत्रों का जप करना तथा वेद - उपनिषद आदि मोक्षदायी शास्त्रों का अध्ययन करना स्वाध्याय कहलाता है क्योंकि इनसे चित की शुद्धि होती है तथा ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति होती है। सर्वप्रथम शब्दपूर्वक ओंकार का जप करें। पुनः नि:शब्द होकर केवल ओषठ कम्पन कें साथ जप करें तथा जिस समय निरंतर अभ्यास करके जप हो जावे तो होठों का भी ना हिलावे केवल आभयंतरवाणी को सक्रिय करके ओंकार का जप करें। यही स्वाध्याय है। स्वाध्याय फल बताते हुए महर्षि पतंजलि कहते हैं कि स्वाध्याय शील साधक देवों, मंत्र दृष्टा ऋषियों और संसार में सिद्ध हुए पुरुषों की आत्मिक प्रेरणा होती है। जब-जब योग साधना करते हुए योगी के सामने कोई व्यवधान आता है तो यह सिद्ध पुरुष उस योगी का मार्ग दर्शन करते हुए तथा उसके कार्य में प्रगति होती है। महर्षि व्यास भी कहते हैं कि विद्वान वेद मंत्रार्थो के दृष्टा योग सिद्धि-स्वाध्याय शील को प्राप्त होते हैं और उसके कार्य में सहायता देते हैं।
5. ईश्वर प्रणिधान:- योग के महाभाषकार महर्षि व्यास जी ईश्वर प्रणिधान को परिभाषित करते हुए कहते हैं शरीर से, मन से, और वचन से जो कर्म किए जाते हैं प्रत्येक छोटी से छोटी क्रिया को ईश्वर को समर्पित करते जाना ईश्वर प्रणिधान कहा जाता है। महर्षि पतंजलि कहते हैं कि ईश्वर के प्रति समर्पित भाव रखने से चित निर्मल हो जाता है और निर्मल चित ही आत्मा का साक्षात्कार हो सकता है। गीता में भगवान श्री कृष्ण अर्जुन को कहते हैं कि हे अर्जुन! तू जो भी करता है, जो भी भोग करता है, जो भी होम करता है, दान करता है अथवा जो भी तप करता है, वह सब मुझे अर्पण

Airo International Research Journal
ISSN: 2320-3714
July 2020, Volume 22

करता चल, यही ईश्वर प्रणिधान है। ऐसे करने से भगवद प्रसाद जल्दी प्राप्त होता है इस अर्पण बुद्धि से किए गए सभी शुभा अशुभ कर्मों को अपना कर्म मान लेते हैं तथा भक्त के योग क्षेम का दायित्व स्वयं वहन करते हैं। फल की इच्छा न करके जो कर्म किया जाता है वह भी ईश्वर प्रणिधान है बस केवल कर्तव्य बुद्धि से कर्म करना है भक्त का अधिकार जो भी फल मिले उसे इश्वर का जाने। ईश्वर प्रणीधान में मन से यह चिंतन करना पड़ता है कि "मैं जो कुछ भी कर रहा हूं वह तुम्हारा ही आदेश है ।अच्छा या बुरा जैसा भी है सब आपको समर्पित है।" ऐसी मानसिक क्रिया करने से ही यह ईश्वर प्रणीधान क्रिया योग का अंग बनता है। ईश्वर प्रणीधान में भक्त समाधि की भी इच्छा नहीं करता और न ही केवल्य की इच्छा करता है उसे तो केवल इश्वर ही प्रिय है। भागवत पुराण में कहा गया है भगवान की चरणरज को प्राप्त हुए भक्त जन न स्वर्ग लोक की कामना करते हैं और न ही सार्वभौम साम्राज्य चाहते है। न पृथ्वी का अधिपत्य ही चाहते हैं। योग सिद्धि और मोक्ष भी उनको प्रिय नहीं होता। ईश्वर का प्रणिधान का अर्थ है - सब कुछ ईश्वर ही करने वाले हैं और करवाने वाले भी वही है। इस प्रकार स्वाध्याय से योगी जल्दी ईश्वर को प्राप्त कर लेता है जो परम सुख है।

निष्कर्ष:-

अत: हम कह सकते हैं कि यम-नियम का महत्व न कि योगी जीवन के लिए आवश्यक है बल्कि एक सांसारिक प्राणी भी अगर यम-नियम के महत्व को स्वीकारे तो जीवन को सार्थक बनाया जा सकता है क्योंकि आज का युग प्रतिस्पर्धा का युग है। प्रत्येक मनुष्य में एक दूसरे से आगे निकलने की होड़ सी लगी रहती है। कोई भी सुख पूर्वक जीवन व्यतीत नहीं कर रहा, आज के मनुष्य जीवन भी स्वार्थ की भावनाओं से ओतप्रोत है। वह अपने स्वार्थ के लिए किसी की हत्या तक करता हुआ नहीं कतराता । परंतु अगर वह भी अपने जीवन में यम-नियम को उतारे तो सुख पूर्वक जीवनयापन कर सकता और अनगिनत पापों से मुक्ति प्राप्त कर सकता है, परंतु योगी साधक के लिए तो यम-नियम प्रथम सीढ़ी के समान है अगर योगी यम-नियम का पालन नहीं करता तो वह योग साधना में एक कदम भी आगे नहीं बढ़

Airo International Research Journal
ISSN: 2320-3714
July 2020, Volume 22

पाता। यम- नियम का पालन करना जितना योगी के लिए आवश्यक है उतना ही साधारण सांसारिक प्राणी के लिए आवश्यक है। इनका पालन किए बिना दोनों ही अपनी सही रास्ते से भटक जाते हैं और दोनों का ही पतन हो जाता है। इस प्रकार हम निष्कर्ष रूप से कह सकते हैं कि वास्तविक के लिए वास्तविक सुख के लिए यम-नियम का पालन करना आवश्यक है।